ISSN:

RESONET : AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY OPEN ACCESS JOURNAL (RESONET-RIMOAJ)

Volume : 1 Issue: 01 | December 2025

मध्ययुगीन भक्तिमार्ग के पथदर्शक - श्रीचक्रधर स्वामी

[1]डॉ. राजेंद्र रंगराव राऊत

[1]मोबा. 9421740733

मध्ययुगीन शताब्दी मे महाराष्ट्र के तीनों भक्ति संप्रदायों, अर्थात् नाथ संप्रदाय, वारकरी संप्रदाय और महानुभाव संप्रदाय के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी। इसमें नाथ संप्रदाय एक शैव संप्रदाय है जिसके आराध्य शिव हैं, जबकि वारकरी संप्रदाय के आराध्य पंढरपुर के विट्ठल हैं। वारकरी संप्रदाय विठ्ठल को श्रीकृष्ण का अवतार मानता है। जबकि महानुभाव संप्रदाय श्रीकृष्ण को ईश्वर का एक स्वतंत्र अवतार मानता है । अंतर केवल इतना है कि अन्य भक्ति संप्रदाय श्रीकृष्ण को श्रीविष्णु का अवतार मानते हैं, जबकि महानुभाव संप्रदाय श्रीविष्णु को देवता मानता है और श्रीकृष्ण को ईश्वर का एक स्वतंत्र अवतार मानता है।

बारहवीं शताब्दी तक महाराष्ट्र में सामाजिक स्तर पर धार्मिक अनैतिकता चरम पर पहुँच चुकी थी । दौलताबाद के विलासी राजा रामदेव यद्यपि राजगद्दी पर थे, परन्तु उन्हें अपनी प्रजा से अधिक अपने विलासी जीवन से लगाव था । इस विलासी राजा के दरबार में हेमाद्रि पंडित और बोपदेव जैसे विद्वान थे । यादव परिवार सनातन धर्म पर गर्व करता था। वे हेमाद्रि जैसे अत्यंत प्रखर सनातन विचारकों से प्रभावित थे ।

दक्षिण और महाराष्ट्र में हिंदू-मराठी शासक, यादव साम्राज्य के बारे में गलत इतिहास भले ही आज भी हमारे मन में सम्मान का स्थान रखता हो, अगर यह सही कारणों से हो, तो ठीक है, लेकिन यह सोचना मूर्खता है कि मराठी साम्राज्य का स्वर्ण युग शिवशाही से पहले फला-फूला था। यादव साम्राज्य मध्यकालीन भारत के क्रूर, स्वार्थी, सामंती साम्राज्यों में से एक था। इसके प्रधानमंत्री हेमाद्रि एक कुशल प्रशासक थे । मोडी लिपि, लेखाशास्त्र और जमाबंदी पद्धति के साथ-साथ हेमाडपंती स्थापत्य कला के लिए भी प्रसिद्ध थे। फिर भी, अंत में, उन्होंने जिस राज्य पर शासन किया, उसके सभी गुण और दोष उनके यहाँ प्रबल रूप से हुए। हेमाद्रि एक कुशल प्रशासक होने के साथ-साथ ब्राह्मणवादी धार्मिक शक्ति के नेता और प्रवक्ता भी थे। उनके शासन काल में पारंपरिक अनुष्ठान, व्रत आदि, जिनका उल्लेख उन्होंने स्वयं अपने ग्रंथ 'चतुर्वर्ग चिंतामणि' में किया है, अपनी चरम सीमा पर पहुँच गए। एक प्रकार से अत्याचारी राजसत्ता और धार्मिक शक्ति प्रधानमंत्री हेमाद्रि के शासनकाल मे केंद्रित थी । उस राजसत्ता के बल पर ही वह ऊँच-नीच की स्थिति को कठोरता से बनाए हुए थे।

श्री चक्रधर ने महाराष्ट्र में इस अनियंत्रित प्रवृत्ति को एक प्रकार की चुनौती दी। उन्होंने शिखासूत्र का परित्याग करके क्रान्तिकारी धार्मिक समता का संदेश दिया। उन्होंने गीता की रचना का सक्रिय समर्थन किया, " त्रैगुण्यां विषयां वेदा । निस्त्रैगुण्यं भवार्जुन । । " अर्थात् गीता द्वारा पूजित वेदों की धार्मिक महानता का महत्त्व प्रतिपादित करके श्री चक्रधर ने धार्मिक हिंसा और कर्मकाण्डों का विरोध किया। यह जानते हुए कि मोक्ष चाहने वालों के लिए वेद किसी काम के नहीं हैं, उन्होंने अपनी मराठी भाषा के माध्यम से ब्रह्मविद्या को आम लोगों तक पहुँचाया। उनके विद्रोह से प्रस्थापित लोगों का क्षुब्ध होना स्वाभाविक था । वे यहीं नहीं रुके, बल्कि जाति-व्यवस्था के कठोर ढाँचे को तोड़ दिया । इतनाही नही, संस्कृत भाषा के स्थान पर लोकप्रचलित मराठी भाषा को अपनाकर जनसामान्य के लिए धार्मिक अनुष्ठान तथा पठन-पाठण के दरवाजे

ISSN:
RESONET : AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY OPEN ACCESS JOURNAL (RESONET-RIMOAJ)
Volume : 1 Issue: 01 | December 2025

हमेशा हमेशा के लिए खोल दिये। साथ ही जातिभेद, वर्णभेद, उँच-नीच, छुआछुत आदि कुप्रथाओं पर कुठाराघात कर स्त्रियों और जनसामान्य में समत्वभाव की स्थापनाकर दीनों, वंचितों और चीरउपेक्षितों को सहृदयता से गले लगाकर उनके इहलौकिक एवं पारलौकिक कल्याण तथा उद्धरण का मार्ग प्रशस्त किया। परिणामस्वरूप, श्री चक्रधर के छल करने, षड्यंत्र रचने और उत्पीड़न करने के प्रयास शुरू हुए। श्री चक्रधर के उत्तरपंथ में प्रवास के बाद, उनके शिष्यों ने उनकी शिक्षाओं को लोकोपकारक मानकर, आदर्श जीवन-पद्धति अपनाई और आँखें खोलकर जीवनयापन करना शुरू किया। इस आचार - पद्धति को महानुभाव संप्रदाय, जय श्रीकृष्णी संप्रदाय, भट मार्ग कहा जाता है।

नायक: श्री चक्रधर स्वामी

गुजरात को पहले ‘लाट' या 'लाड' देश कहा जाता था। इस लाट देश के राजा 'सोलंकी वंश' के भोला भीमदेव थे। चूँकि वे स्वभाव से अत्यंत सरल थे, इसलिए शासन-प्रबंध उनके सरदार 'लवणप्रसाद' द्वारा चलाया जाता था। लवणप्रसाद के पुत्र वीरधवल कर्मठ व्यक्ति थे। वहाँ की प्रजा लवणप्रसाद और वीरधवल को ही सरदार मानती थी। ये दोनों राजगद्दी के निष्ठावान समर्थक थे और शासन-प्रबंध का संचालन करते थे। भोला भीमदेव की मृत्यु के बाद उनका पुत्र राजगद्दी पर बैठा। किन्तु, चूँकि वह भी भोला भीमदेव की तरह भोला था, इसलिए वीरधवल ने उसे पदच्युत कर दिया और गुजरात पर अधिकार कर लिया। उनके उत्तराधिकारी वस्तुपाल और तेजपाल थे, जो दो बुद्धिमान और कूटनीतिज्ञ जैन सरदार थे। इन दोनों जैनियों ने आबू में एक अत्यंत भव्य और समान रूप से दिव्य संगमरमर का मंदिर बनवाया था। आज भी उस पर स्पष्ट उल्लेख है कि गुजरात के सोलंकी राजा वीरधवल के सरदार वस्तुपाल और तेजपाल ने इस भव्य मंदिर का निर्माण करवाया था। इस उल्लेख से भी यह स्पष्ट है कि वीरधवल को उसकी प्रजा ने राजा स्वीकार कर लिया था। हालाँकि लवणप्रसाद स्वयं को सरदार मानता था, वीरधवल स्वयं को राजा मानता था। वह क्षत्रिय राजपूत सोलंकी वंश का राजा था। उसका एक वीर पुत्र था। उसका नाम विशालदेव था। वह बाद में राजस्थान और गुजरात में सम्राट विशालदेव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसकी वीरता की मधुरता आज भी उत्तर भारत में गाई जाती है और उसकी वीरता की कहानी ‘बीसलदेव रासो’ कहलाती है। यह कविता के रूप में प्रसिद्ध है। इसे हिंदी की पहली ज्ञात भावपूर्ण कविता माना जाता है। विशालदेव का विवाह चौहान राजघराने की माल्हनदेवी से हुआ था। राजा विशालदेव और रानी माल्हनदेवी के यहाँ एक अत्यंत तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम हरिपालदेव रखा गया। यही हरिपालदेव आगे चलकर महाराष्ट्र के धार्मिक क्षितिज पर असाधारण तेज के साथ 'श्रीचक्रधर स्वामी' के रूप में उभरे और लीलाचरित्र के नायक बने।

श्रीचक्रधर स्वामी का वंश

अनेक विद्वानों ने उल्लेख किया है कि श्रीचक्रधर एक 'सामवेदी लाड ब्राह्मण' थे। इस नोट के पीछे श्रीचक्रधर स्वामी द्वारा किया गया आत्मकथात्मक कथन इन सभी निर्णयों के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। श्रीचक्रधर स्वामी के शिष्य महादाइसा ने श्रीचक्रधर स्वामी से उनके पिछले जीवन के बारे में पूछा था। इस पर श्रीचक्रधर स्वामी ने कहा, 'हम सामवेदी लाड हैं। हमारे पिता का नाम 'विशालदेव' और माता का नाम 'मल्हानदेवी' है। इस कथन के आधार पर अनेक विद्वानों और विद्वानों के समूहों ने यह निष्कर्ष निकाला कि श्रीचक्रधर स्वामी अवश्य ही एक 'सामवेदी ब्राह्मण' रहे होंगे। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि वैदिक शाखाएँ केवल ब्राह्मणों में ही पाई जाती हैं। लेकिन वास्तविकता अलग है। चूँकि क्षत्रिय द्विज थे, इसलिए

उनके कुलों की भी वैदिक शाखाएँ थीं। पंडित बलदेव मिश्र ने भड़ौच के सोलंकी वंश के गोत्रों का अध्ययन करते हुए अपने शोध ग्रंथ 'टॉड राजस्थान' (अध्याय ६, पृष्ठ ६०) में सोलंकी कुल का वर्णन किया है। वे इसमें कहते हैं-

" माध्यन्दिन शाखा, भारद्वाज गोत्र, गढ़लोहकोट निवास, सरस्वती नदी, सामवेद, कपिलेश्वरदेव, कर्तुमानारिकेश्वर, तिन पुरवार जिनार, किनोज देवी महापालपुत्र "

उपरोक्त विवरण के अनुसार, सोलंकी राजा माध्यन्दिन शाखा के सामवेदी क्षत्रिय राजा थे। क्षत्रिय वंशों के अभिलेखों में उनकी वैदिक शाखा को दर्ज करने की प्रथा संपूर्ण भारत में प्रचलित थी। चूँकि क्षत्रिय द्विज थे, इसलिए उनकी वैदिक शाखाएँ दर्ज की गईं। इसका उल्लेख गुजरात या लाट देश के प्रसिद्ध राजपूत क्षत्रिय वंशों के इतिहास में मिलता है। श्री विशालदेव का काल गोत्र - विवरण स्पष्ट रूप से दर्ज है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजा वीरधवल और उनके पुत्र विशालदेव गुजरात के सोलंकी वंश के राजा हुए। महाकाव्य ‘बीसलदेव रासो’ के नायक महान राजा विशालदेव हैं जिन्हें 'सम्राट' की उपाधि प्राप्त हुई थी। जैसा कि स्वर्गीय महंत मुकुंदराज आराध्य कहते है कि, “विशालदेव का विवाह चौहान राजघराने की मल्हानदेवी से हुआ था। उनसे उत्पन्न पुत्र का नाम 'हरिपालदेव’ था। यही हरिपालदेव आगे चलकर महाराष्ट्र में प्रकाशित महान जीवनी 'लीलाचरित्र' के महानायक श्रीचक्रधर हुए", जो अब ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है।

(२) लीलाचरित्र : एक जीवनी

'लीलाचरित्र' मराठी की प्रथम गद्य रचना ही नहीं, बल्कि प्रथम जीवनी भी है। इस जीवनी के नायक श्रीचक्रधर स्वामी हैं । यह ग्रंथ उनके सांसारिक जीवन के साथ-साथ उनके अलौकिक व्यक्तित्व का भी यथार्थवादी दर्शन कराता है। इस दृष्टि से भी यह एक अद्वितीय ग्रंथ है। इस जीवनी के रचयिता म्हाइंभट्ट संस्कृत के एक महान विद्वान थे, जिन्होंने सम्पूर्ण भारत से अनेक विद्याओं का ज्ञान अर्जित किया था। वह जीवनीकार नायक के संपर्क में रहा है। श्रीचक्रधर में उनकी गहरी आस्था थी। वे उनके प्रति असीम भक्ति से ओतप्रोत थे। धन, यश, मान और प्रतिष्ठा सब कुछ त्यागकर ऋषि-मुनि का जीवन जीने वाले म्हाईंभट्ट अहंकार के त्याग की साक्षात् मूर्ति हैं।

वास्तव में, म्हाईंभट्ट का ग्रंथ लिखने का कोई इरादा नहीं था। लेकिन जब श्री चक्रधर स्वामी उत्तरपंथ के लिए प्रस्थान कर रहे थे, तब उनके शिष्य अत्यंत व्यथित हुए । उनका अत्यधिक दुःख चरम पर पहुँच गया था। सभी भक्त ऋद्धपुर में श्रीगोविंदप्रभु के सान्निध्य में एकत्रित हुए। श्रीचक्रधर द्वारा अनुमोदित प्रथम आचार्य श्री नागदेव को प्रतिदिन किसी न किसी बात पर मौन ध्यान करते देख, श्री म्हाईंभट्ट ने उनसे पूछा, “भटो ! क्या तुम निरंतर किसी बात का ध्यान करते हो ? क्या आप इस रहस्य को बताकर मेरी जिज्ञासा तृप्त करेंगे?” इस पर आचार्य ने कहा, "म्हाईंभट्ट ! मुझे स्वामी की लीलाएँ सदैव स्मरण रहती हैं। क्योंकि स्वामी ने मुझे यह अनुष्ठान तब बताया था जब मैं हिवराली से ऋद्धपुर के लिए प्रस्थान कर रहा था। स्वामी ने कहा था, हे वानर ! यहाँ दर्शन का ज्ञान, अर्थ का ज्ञान, उसका श्रवण, ध्यान, इसका स्मरण करो " (स्मृतिस्थल) नागदेवाचार्य का यह कथन श्रीचक्रधर स्वामी की लीलाओं की स्मृति के पीछे की प्रेरणा को स्पष्ट करता है और इसी प्रेरणा से श्री म्हाईंभट्ट ने लीलाओंका संपादन, संकलन और लेखन किया । इसमे श्रीचक्रधर स्वामी द्वारा अपने जीवन के बारे में दी गई जानकारी एकल 'एकांक' लीलाओं से ज्ञात होता है कि उनके शिष्यों

ISSN:
RESONET : AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY OPEN ACCESS JOURNAL (RESONET-RIMOAJ)
Volume : 1 Issue: 01 | December 2025

ने उनके जीवन के पहलुओं को समझा और लोगों ने स्मृति रूपी इन लीलाओं के कोष को म्हाईंभट्ट को हस्तांतरित किया। महाईंभट्ट ने इसका प्रत्यक्षदर्शी दृष्टिसें भावपूर्ण लेखन किया।

निःसंदेह, महादाइसा के संवादात्मक भाव के कारण ही हम इन लीलाओं से श्रीचक्रधर स्वामी के पूर्व जीवन को जान पाए। दूसरी ओर, हम श्रीचक्रधर स्वामी की समग्र दिनचर्या, अर्थात् उनके जीवन की वास्तविक कहानी, जब वे लोक में आए, को उजागर कर पाते हैं। तात्यासाहेब केलकर का कथन बहुत सटीक है, "महान लोगों की छोटी-छोटी बातें भी आदर योग्य होती हैं, क्योंकि वे महान व्यक्तियों की स्मृति को बढ़ाती हैं। यह स्वाभाविक है कि जैसे-जैसे समय बीतता है, यह स्मृति उतनी ही अधिक दृढ होती है... इसलिए, कुछ तथ्य या वाक्य किसी व्यक्ति विशेष की पूजा के लिए स्मृति को अधिक पवित्र आधार प्रदान करते हैं... जब भी हम किसी को याद करते हैं, तो वह उस व्यक्ति एक या अधिक वस्तु अथवा पहलुओं के माध्यम से ही संभव होता है; पवित्रता के बिना कोई स्मृति नहीं हो सकती... यद्यपि भगवान की पूजा की पवित्र भावना उत्पन्न करने वाला 'अभिषेक पात्र' पचास रुपये का होता है, यह स्नान को गर्म करने के लिए उपयोग किए जाने वाले पाँच सौ रुपये के पानी गर्म करने का तांबे का पात्र से अधिक पवित्र है, इसलिए इसे संरक्षित किया जाता है। यह विश्लेषण 'लीलाचरित्र' की रचना पर पूरी तरह से लागू होता है।"

श्री चक्रधर का प्रागैतिहास

यद्यपि श्रीचक्रधर का जीवन रक्षक और समाज - - पुनर्निर्माण कार्य मुख्यतः महाराष्ट्र में हुआ, फिर भी यहाँ की व्याख्या के अनुसार, उनका जन्म भरवास (भड़ोच - गुजरात राज्य) में हुआ था। चूँकि वे पच्चीस वर्ष की आयु में महाराष्ट्र पहुँचे थे और कई वर्षों तक लोगों से नहीं मिले, इसलिए बीच के लंबे समय का विवरण अज्ञात है। लेकिन उन्होंने स्वयं अपने पूर्व जीवन की स्मृतियों का वर्णन समय-समय पर किया है, जिसके कारण श्रीचक्रधर का जीवन अनेक अद्भुत घटनाओं से भरा हुआ है।

यहाँ एक घटना है जो सिद्ध करती है कि श्रीचक्रधर पूर्वाश्रम के एक कुशल योद्धा थे:

यादव रायाचे कटकू गुर्जरा वरी चालिले:
जे राये विणु: प्रधानु राज्ये करीतुसे: तरी ते
राज्यू घेयावे भौनि: सिंघणु राजे चाली
केली: ते जगळदेऊ: विंझदेऊ : मायीदेऊ पाठविले:
ते ऐकौनि: वीरधवल आन विशालदेवे: आपले
कटके: बलहाडे पाठवीले: सवे जुंझमल्ल प्रतापिया
दिन्हला: मग येरू येरा दलां जुंझ जाहले:
जाधवाचेनि दले प्रधानाचे दल भंगीनिले: मग प्रधानपुत्र
हरिपाळदेवे कटकेची आइती मांडीनिली: पूर्वेचेया
दारिवंठा बाहिरी: दुसे दिन्हली: वल्लाल ताटिया:
भवते घोडेयाचे लाहासू: हस्ती बोलाविले: मग राणे
राउतुमाणिये: पाइक परिवारूनसी जाधवावरी
चाली केली: तव जाधवाचे कटकु मुरडैले: तव

ISSN:
RESONET : AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY OPEN ACCESS JOURNAL (RESONET-RIMOAJ)
Volume : 1 Issue: 01 | December 2025

प्रधानपुत्रः सर्व दलेंसी: तेया कटकां टाकौनि
गेलाः मग जगळदेआंः विंझदेआंः युद्ध केलेः
ते प्रधानपुत्रे भंगिलेः मग तो आपुलेनि कटकाचेनि
बलेः सत्ता बैसवीतुः बैसवीतु एलापूरा वेही
आलाः मग यादवे सिष्टाइ केली: मग प्रधानाची
कटकै बहुडैलीः" (श्रीचक्रधर 'लीलाचरित्र' प्रस्तावना पृ. ५१, हस्तलिखित शालीवाहन शके १४९७, महंत मुकुंदराज आराध १९३०).

महाराष्ट्र के इतिहास का पता लगाने पर ध्यान आता है कि राजा सिंघनदेव यादव उत्तरी और दक्षिणी राज्यों पर लगातार आक्रमण करते रहते थे। उनके पास खोलेश्वर नाम का एक वीर सेनापति था। एक बार खोलेश्वर के नेतृत्व में यादव सेना ने गुजरात पर आक्रमण किया, जिसका उल्लेख गुजरात के इतिहास में मिलता है। उस समय हुए इस युद्ध में लवणप्रसाद के पुत्र वीरधवल और उनके पुत्र विशालदेव दोनों ने भाग लिया था। इसमें गुजरात को बहुत हानि हुई। उस समय विशालदेव के पुत्र हरिपालदेव २३-२४ वर्ष के युवक थे। १२१० ई. में हुआ यह आक्रमण गुजरात के इतिहास में दर्ज है। इस युद्ध में वीरधवल और विशालदेव यादव सेना का सामना नहीं कर सके। उस विकट परिस्थिति में लवणप्रसाद ने अपने पुत्र वीरधवल और पोते विशालदेव को राजा सिंघनदेव से संधि करने की सलाह दी।

उसी समय उग्र रक्त के युवा हरपालदेव ने उन्हें संधि के स्थान पर न केवल युद्ध करने की सलाह दी ; बल्कि उन्होंने तब तक युद्ध करने का निश्चय व्यक्त किया ताकि संधि भी सम्मानपूर्वक लढी जा सके। युद्ध की बागडोर अपने हाथों में लेकर, हरिपालदेव अपनी

युवा सेना के साथ युद्ध में उतर पड़े। उनके कुशल नेतृत्व में, उनकी सेना ने सिंघनदेव यादव की सेना को परास्त किया और हार के कगार पर पहुँचे युद्ध को एक शानदार विजय मे परिवर्तित किया।

ऐसे गुणवंत राजकुमार की अल्पकाल में बीमारी के बाद मृत्यु हो गई। राजकुमार के वियोग का शोक पूरे राज्य में फैल गया। प्रजा दुःखी हो गई। माता-पिता पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। शोकाकुल वातावरण में राजकुमार को अंतिम संस्कार के लिए कलेवर श्मशान लाया गया। राजकुमार के पार्थिव शरीर को चिता पर पड़ा देखकर राजा विशालदेव और पूरा राजपरिवार अपार शोक में डूब गया। विशालदेव राजकुमार के अंतिम दर्शन हेतु चिता के पास गए और एक अद्भुत चमत्कार हुआ ! चिता पर गिरा कलेवर जीवित हो उठा। सर्वत्र हर्ष का एक ही नाद फैल गया। "कुमरु जियाला जियालाः" (ली.च. पूर्वार्ध, पृष्ठ क्रमांक १७) इस हर्षोल्लासपूर्ण वातावरण में पूरे राज्य में हर्षोल्लास के समारोह आयोजित होने लगे । किन्तु राजकुमार का मन सांसारिक जीवन और राजसी वैभव से संतुष्ट नहीं था। अंततः राजकुमार हरिपालदेव रामटेक जाने का बहाना बनाकर राज्य से चले गए। धीरे-धीरे अपने साथ आई सेना को वापस भेजते हुए, वे अंततः महाराष्ट्र के अमरावती जिले के रिद्धपुर पहुंचे, यह सोचकर कि उन्हें अपने रिश्तेदारों को विशेष रूप से छोड़ देना चाहिए।

श्री गुंडमराउल उपाख्य श्री गोविंदप्रभु रिद्धपुर में रहते थे। श्री गोविंदप्रभु सेवभजिया के खा रहे थे । हरिपालदेव को देखकर वे प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने हाथ में ली हुई सेवभजिया हरिपालदेव की ओर उछाल दी । हरिपालदेव ने तुरंत उस उस प्रसाद को आगे बढ ऊपर अधर में लपक लिया, और मस्तक लगा कर यह कहते उसे खाने लगे "हे महाराज ! यह आपका कृपा प्रसाद है ।" इसके साथ हरिपाल देव ने उन्हें नमस्कार भी किया । उस समय भगवान श्री गोविंदप्रभु ने आगे बढ उन्हे

ISSN:
RESONET : AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY OPEN ACCESS JOURNAL (RESONET-RIMOAJ)
Volume : 1 Issue: 01 | December 2025

अपने प्रगाढ आलिंगन में बाँध लिया और प्रमोदीत स्वर मे कहा " अजि आप तो चक्राख्य हो ! चक्रेश हो ! साक्षात श्रीचक्रधर हो !"

गुरु कृपा से श्री गोविंद प्रभु से ज्ञान की शक्ति प्राप्त करने के बाद, वे निर्जन प्रदेश की यात्रा पर निकल पड़े और उत्तर दिशा में लौटने तक निरंतर भ्रमण करते रहे। उनकी इस स्थिति का वर्णन करते हुए जीवनीकार म्हाईंभट्ट कहते हैं-

"कटियाचे ओरखंडे जाती: तेथे असुधांचे बींदु निघतिः
ते श्रीमुर्तीवरी वाळतीः जैसा का माणिके: मोतीयेः रत्नेः खेवाणिली असतिः
तैसी बाहुप्रदेशी मिरवीतीः जैसा पन्हरेयावरी टीक ऐसी मीरवतिः
खडेया गोटेया पहुडु स्वीकारीतीः"

ऐसी स्थिति में, श्री चक्रधर स्वामी ने वनवासियों के साथ सालबर्डी के वन में बारह वर्षों तक निवास किया। इसी वन एक अभूतपूर्व कृति का सूत्रपात हुआ, 'सासरक्षण (ली.च. पूर्वार्ध, ४२)। पर्वतों में रहने वाले 'शिकारी' इन वनवासियों के साथ घटित यह घटना जीवन के सार्वभौमिक मूल्य को उजागर करती है। विश्वात्मकता का अभ्यास सिखानेवाली यह लीला व्यक्ति मनुष्यता का बोध कराने के लिए पर्याप्त है। एक अत्यंत निरीह प्राणी - खरगोश - "महात्मेहो या !" को दिए गए उनके आश्वस्तका संबोधन से मानव अस्तित्व का बोध सार्वभौमिक स्तर पर पहुँचता है। हिंसा को अपना धर्म मानने वाले शिकारी भी इसी श्री चक्रधर की सहायता से हिंसा का मार्ग त्यागने का निश्चय करते हैं। आज हमारे तथाकथित उन्नत समाज के सामाजिक चिंतक चाहे कितना भी हमें युद्ध नहीं, बुद्ध चाहिए सोचें, हिंसा की छाया तब तक नहीं हट सकती जब तक मनुष्य की मनुष्यता प्रबल नहीं होगी। एक प्रसंग में श्रीचक्रधर स्वामी अपने भक्तों से कहते हैं, "वीरों, हिंसा को जड़ से उखाड़ दो।"

बारहवीं शताब्दी का तत्कालीन समाज दो असमान पक्षों में बँटा हुआ था। एक ओर मुट्ठीभर धर्मगुरु / ईश्वरीय ज्ञान के साधक; दूसरी ओर बहुजनों का विशाल समूह। इन बहुजनों के लिए ज्ञान के द्वार सदा के लिए बंद कर दिए गए। चूँकि संस्कृत ईश्वरीय भाषा है, इसलिए ज्ञान मुट्ठी भर संस्कृत विद्वानों के हाथों तक ही सीमित था। हेमाद्रि पंडितों की कूटनीति प्रबल थी। उनके साथ-साथ अन्य धर्मगुरुओं ने भी आम जनता को गुलाम बना रखा था। जाति-व्यवस्था से उत्पन्न अन्याय चरम सीमा पर पहुँच गया था। शूद्रों का जीवन पशुओं से भी निम्न स्तर पर पहुँच गया था। इसी संदर्भ में एक लीला, 'चर्मकार स्थिति-' में, एक मोची को उसके धर्म को अपवित्र करने के कारण चूना पत्थर के गड्ढे में डालकर ऊपर से पानी डालकर दण्डित किया जाता है। यह अमानवीय यातना की पराकाष्ठा है। दूसरी ओर, सिद्ध-साधक भी कम नहीं थे। घोडाचूडी के शिष्य, जो क्रोध में आकर गांव को आग लगाने की अपनी क्षमता का गर्व से बखान करते थे, वे भी विकृति की पराकाष्ठा थे।

एक के बाद एक लीला के माध्यम से श्रीचक्रधर ने " बखुबी समुदाय को इस भयावह वास्तविकता से रूबरू कराया है। उदाहरण के लिए, कूडे के ढेर में विश्राम कहानी में नायक श्री चक्रधर स्वयं एक कूडे पर एक कुत्ते द्वारा बनाए गए बिल में सोने चले जाते हैं; अगली सुबह वे वहाँ से चले जाते हैं। लेकिन तार्किक रूप से सोचने के बजाय, "अरे! कूडा प्रसूत हुआ है, उसने एक आदमी को जन्म दिया है। अब गाँव पर भारी मुसीबत आनेवाली है। उसकी शांति के लिए यज्ञ जैसी मूर्खतापूर्ण धारणा रखने वाले ग्रामीण इसे गाँव के लिए एक आपदा मानकर शांति लाने का उपाय ढूँढ़ते हैं। कितनी अज्ञानता!

ISSN:
RESONET : AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY OPEN ACCESS JOURNAL (RESONET-RIMOAJ)
Volume : 1 Issue: 01 | December 2025

श्री चक्रधर जानते थे कि काँटे को काँटे से ही निकालना होगा। जनता को अज्ञानता के इस भयानक अंधकार से बाहर निकालना होगा। इसीलिए उन्होंने इस अवांछनीय रीति-रिवाज और परंपरा को तोड़ने के लिए विद्वान ब्राह्मण शिष्यों को नियुक्त किया।

उन्होंने स्थापित ब्राह्मणों को चुनौती देते हुए उनसे शिखा - सूत्र का त्याग करवाया और स्थापित ब्राह्मणों की अवधारणा को तोड़ा। उन्होंने जाति-पाँति के आवरण को तोड़कर उन्हें शुद्ध मानवता का बोध कराया। निस्संदेह, उन्हें इसकी कीमत अनंत यातनाएँ झेलकर चुकानी पड़ी। ब्रह्मसानु द्वारा विष का प्रयोग, हेमाद्रि पंडित द्वारा क्रूर यातनाएँ - स्थापित ब्राह्मणों के इन अस्त्रों को श्री चक्रधर ने निष्प्रभावी कर दिया। लोक कल्याण का यह व्रत लेकर वे गंगा के दोनों किनारों पर दिन-रात विचरण करते रहे। महाराष्ट्र में न केवल उनका कार्यक्षेत्र था; बल्कि इस संबंध में एक घटना बहुत कुछ बयां करती है।

"गोसावी आसनी उपवीष्ट असतिः सर्वज्ञें म्हणीतलेः "नायका हे आता मलेंसामध्ये असैलः तथा हे आता मल्लिंसामध्ये जाइलः उत्तरापंथेः तयाचीया सारीखे बोलीजैलः तयाचीया बाजा सुपवतीयावरी नीद्रा किजैलः तयाचे आहार व्यवहार स्वीकारीजतिः तयाचीया बाजेवरी बैसतिः तयाचीया वाकळा गोदडीया पांगरौनि तयाप्रति आन नीरोपीजैलः तेथ आता जाइजैल: "

" जी जी: स्वामी जगन्नाथ : ऐसे मत कीजिए। वहाँ जाना नही चाहिए। वह जगह जाने योग्य नही है तब सर्वज्ञ ने कहा- "देखो क्या हमने सिर्फ आपकाही उद्धार करना है। इस जगत मे कई जीव है, जिनका उद्धार भी हमें ही करना है। क्या उनके लिए कोई अलग भगवान है ?"

सम्पूर्ण जन-जन के उत्थान के प्रति समर्पित श्री चक्रधर प्रांत, भाषा और धर्म से परे कार्य करते रहे। श्री चक्रधर, जिन्होंने तत्कालीन समाज में यह विचार रोप दिया कि ज्ञान की भाषा, जिस समाज में वे जा रहे हैं, वहाँ के लोगों की भाषा होनी चाहिए, मानवता के कालजयी दूरदर्शी कहे जा सकते हैं। आज विश्व भर के शिक्षाविद् मातृभाषा के माध्यम से ज्ञान प्रदान करने की बात कर रहे हैं। लेकिन ८०० वर्ष पूर्व का यह विचार क्रांतिकारी कहा जा सकता है।

विद्रोही श्रीचक्रधर

१३ वीं शताब्दी में, राजा रामदेवराय यादव का क्रूर शासन महाराष्ट्र व्यापक था। लेकिन इतिहासकारों ने यह भ्रामक धारणा फैलाई है कि यादव साम्राज्य स्वर्ण युग था। दक्षिण और महाराष्ट्र में हिंदू मराठी शक्ति पर गर्व करने या उसके प्रति लगाव रखने में कोई बुराई नहीं है। राजा रामदेवराय यादव के दरबार में, उनके प्रधानमंत्री हेमाद्रि पंडित एक अत्यंत कुशल प्रशासक लेखा-जोखा और जमा-निकासी की व्यवस्था के साथ-साथ प्रसिद्ध हेमाडपंती स्थापत्य कला के लिए भी प्रसिद्ध थे। हालाँकि, उनके द्वारा संचालित शासन-व्यवस्था के सभी गुण-दोष उनके यहाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देते थे। वे न केवल एक प्रशासक थे, बल्कि ब्राह्मणवादी धार्मिक सत्ता के नेता और प्रवक्ता भी थे। अपने ग्रंथ 'चतुर्वर्गचिंतामणि' में उन्होंने पारंपरिक ब्राह्मणवादी कर्मकांडों, व्रतों और प्रतिबंधों को पराकाष्ठा तक पहुँचाया था। संक्षेप में, हेमाद्रि के यहाँ अत्याचारी राजसत्ता और पारंपरिक धार्मिक सत्ता एक हो गई थीं। श्रीचक्रधर स्वामी ने ब्राह्मणवादी विद्वानों के माध्यम से इस ब्राह्मणवादी धार्मिक सत्ता को चुनौती दी।

ISSN:
RESONET : AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY OPEN ACCESS JOURNAL (RESONET-RIMOAJ)
Volume : 1 Issue: 01 | December 2025

विद्रोही श्रीचक्रधर, जिन्होंने कठोर जाति व्यवस्था को तोड़कर समानता स्थापित की, स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिलाने वाले श्रीचक्रधर, शंकराचार्य के अद्वैतवाद को द्वैतवाद से प्रत्युत्तर देने वाले श्रीचक्रधर, जनसामान्य की भाषा के माध्यम से दर्शन की गंगोत्री स्थापित करने वाले श्रीचक्रधर, विद्रोहियों के मुकुटमणि माने जाने चाहिए। अगर बात यहीं रुक जाती, बात समझ में आती। लेकिन राजपरिवार के सदस्य, जिन्होंने नाम और राजसी शक्ति का इस्तेमाल करके यह सब करवाया, श्रीचक्रधर के प्रति आकर्षण महसूस करने लगे।

एक समय हेमाद्रि पंडित और उनके समर्थकों को यह एहसास हो गया था कि अगर राजा महादेव राय, कन्हारदेव, उनकी रानियाँ और परिवार, तथा राज्य के महत्वपूर्ण अधिकारी श्री चक्रधर के प्रभाव में आ गए, तो अकेले शासन करने की उनकी राक्षसी प्रवृत्ति टिक नहीं पाएगी। इसीलिए उन्होंने श्री चक्रधर को खत्म करने के कई असफल प्रयास किए।

दूसरा विद्रोह यह था कि श्री चक्रधर ने वैदिक दर्शन के स्थान पर बुद्धिवाद का प्रवर्तन किया। यह ब्राह्मणवादी परंपरा के विरुद्ध उनका सीधा विद्रोह था। उन्होंने ब्राह्मणवादी देवी-देवताओं, पुराणों की पौराणिक कथाओं पर सीधा प्रहार किया। अतः स्पष्ट था कि कर्मकांडों की जड़ें क्षतिग्रस्त हो रही थीं। उन्होंने धर्म में आडंबर को कोई स्थान नहीं दिया, इतना ही नहीं, जाति-व्यवस्था को अस्वीकार करते हुए उन्होंने संन्यास धर्म को स्त्रियों, और यहाँ तक कि सर्वोच्च शूद्रों के लिए भी द्वार खोल दिया। उन्होंने आडंबर के स्थान पर धर्म की एक नई परिभाषा, 'कर्म-धर्म', स्थापित करने का प्रयास किया और वे इसमें काफी हद तक सफल भी रहे। महानुभावीय तत्त्वज्ञान

शंकराचार्य अद्वैत के समर्थक थे। वे ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य पदार्थ मानते हैं, जबकि सांख्य पुरुष और प्रकृति को दो मूल पदार्थ मानता है, इसलिए वे द्वैतवादी हैं। श्री चक्रधर स्वामी भी द्वैतवादी हैं। उनके दर्शन के अनुसार जीव, देव, प्रपंच और ईश्वर इन चार

घटकों में पूर्ण अंतर है; द्वैत है। इन चार घटकों में से किन्हीं दो या अधिक का किसी भी परिस्थिति में एक होना संभव नहीं है। ये घटक नित्य, स्वतंत्र, अनादि और अनंत हैं। आदि सृष्टि के आरंभ में केवल यही चार तत्त्व विद्यमान थे। इनमें से प्रपंच ठोस है। इसका कारण प्रपंच नित्य हैं, जबकि कार्य प्रपंच अनित्य है। भगवान नित्य मुक्त हैं, देवता नित्यबद्ध हैं, और आत्मा बंधन से मुक्त है। (वि.४५) चूँकि देवता नित्यबद्ध हैं, इसलिए वे नित्य उसी अवस्था में हैं। अर्थात् उनकी कोई मुक्ति नहीं है। चूँकि जगत् जड़ है, इसलिए उनकी मुक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता ; किन्तु आत्मा अनादि काल से अज्ञान से बद्ध होने पर भी मुक्त होने की योग्यता रखती है। इसीलिए उसे बंधनमुक्त कहा गया है। जिस प्रकार आत्मा और ईश्वर स्वतंत्र सत्ताएँ हैं, उसी प्रकार जगत् भी एक स्वतंत्र सत्ता है। देवता नित्यबद्ध हैं। उनका मुख्य कार्य आत्माओं को उनके कर्मों का, सुखद और अप्रिय, दोनों प्रकार का फल देना है। देवता ईश्वर और मुक्ति से संबंधित कर्मों का फल नहीं दे सकते। भगवान नित्य हैं। वे माया, देवता, जगत् और आत्मा के निम्नतम विभाग से परे अर्थात 'परा' हैं। इस परा विभाग में ईश्वर और ब्रह्म हैं। अव्यक्त ईश्वर अवतार लेकर प्रकट होते हैं। ईश्वर आत्मा को मुक्ति प्रदान कर सकते हैं। यद्यपि, मुक्ति के बाद भी आत्मा ब्रह्म या ईश्वर नहीं बन सकती, क्योंकि ईश्वर और जीवन दो भिन्न एवं शाश्वत वस्तुएँ हैं। इसी प्रकार, आत्मा अपने कर्मों के अनुसार देवताओं के फल प्राप्त कर सकती है, परन्तु ईश्वर नहीं बन सकती। ईश्वर सर्वोच्च है। यदि आत्मा बंधी हुई भी हो, तो भी वह मुक्त हो सकती है। यदि ज्ञान से रहित आत्मा ईश्वर के स्वरूप को प्राप्त कर मुक्त भी हो जाए, तो भी वह आत्मा ही रहती है। प्रत्येक आत्मा का स्वरूप अनादि काल से अविद्यायुक्त है। (मा.वा. २) इस अविद्या के प्रभाव से ही जीव का स्वरूप समस्त दोषों

ISSN:
RESONET : AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY OPEN ACCESS JOURNAL (RESONET-RIMOAJ)
Volume : 1 Issue: 01 | December 2025

का आश्रय बन गया है। अज्ञान के कारण जो अविद्या, मोह आदि दोष प्रवृत्त होते हैं, उनके कारण आत्मा का अस्तित्व नहीं रहता, वह अज्ञान ही रहता है। जब इस अज्ञान के आवरण का भेदन हो जाता है, तो आत्मा में विद्यमान अज्ञान पृथक् हो जाता है और शुद्ध जीवरूप शेष रह जाता है। (मा.वा.३)

परमेश्वर को प्राप्त करने के दो उपाय हैं। एक है भक्ति और दूसरा है ज्ञान। यदि जीवात्मा ने पूर्वकल्पित विचार के अनुसार भगवान से प्रेम जोड़ लिया है, तो भगवान उसमें प्रेम संचारित करते हैं। यह प्रेम ही भक्ति है । इस भक्ति संचार के बाद जीवात्मा भगवान का निरंतर सान्निध्य प्राप्त कर मोक्ष की स्थिति प्राप्त करता है। भगवान से या उनकी सत्ता से भगवान को जानने के बाद, उसे भगवान के अलावा किसी अन्य पर विश्वास किए बिना भगवान का स्मरण करते हुए अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए। उसे विकारों और बुराइयों से मुक्त होना चाहिए और अपनी प्रकृति पर नियंत्रण प्राप्त करना चाहिए । फिर अगले जन्म में, भगवान उसे जोड़ते हैं और उसे मोक्ष की स्थिति में ले जाते हैं। दो प्रकार के विकल्प हैं। एक है आत्मा-परमात्मा पर दिव्य चेतना का होना। ऐसा होने से रोकने के लिए बुद्धिमान को देवी-देवताओं के मंदिरों में नहीं जाना चाहिए। उसे देवताओं को प्रसन्न करने के लिए आयोजित किसी भी समारोह में भाग नहीं लेना चाहिए। उसे उनके तीर्थ स्थलों पर भी नहीं जाना चाहिए। दूसरे प्रकार का विकल्प है। यह श्रेष्ठ, वह निकृष्ठ, यह ब्राह्मण, वह निम्न जाति का इस तरह से मन में भेद उत्पन्न करना या ज्ञानी पंडित होने जैसी पहचान दिखाना भी एक विकल्प ही है।

आत्मा अपने कर्मों से सब कुछ प्राप्त करती है। एक ईश्वर के अलावा, कोई अन्य देवी-देवता आत्मा को मोक्ष नहीं दे सकते या आत्मा का उद्धार नहीं कर सकते । इसलिए, आत्मा को सांसारिक सुख के बजाय ईश्वर से ईश्वर का सुख माँगना चाहिए। आत्मा की मुक्ति, अर्थात् अच्युतपद की प्राप्ति के दो मुख्य साधन हैं। एक है- 'ज्ञान' और दूसरा है - प्रेम | प्रेम को ही 'भक्ति' भी कहा जाता है। प्रेम ज्ञान से श्रेष्ठ है। (वि.मा. ३०) भक्ति का मार्ग ज्ञान के मार्ग से श्रेष्ठ है। ज्ञान का मार्ग बहुत कठिन है, किन्तु भक्ति का मार्ग ऐसा नहीं है। यद्यपि ज्ञान का मार्ग अविनाशी पद की प्राप्ति कराता है, किन्तु ब्रह्मस्वरूप का ही आनंद अनुभव किया जा सकता है। ईश्वरस्वरूप का नहीं। ईश्वरस्वरूप का आनंद यह भक्ति मार्ग से ईश्वरस्वरूप प्राप्त करने पर ही प्राप्त होता है । ब्रह्मस्वरूप से ईश्वरस्वरूप श्रेष्ठ है, और जिस भक्तिमार्ग से उसे प्राप्त किया जा सकता है, वह भी श्रेष्ठ है।

यदि हम इसे दूसरे दृष्टिकोण से देखें, तो यह देखा जाता है कि ज्ञान प्रेम से श्रेष्ठ है। क्योंकि ज्ञान मुक्तिदायक है। (वि.मा.१) न केवल प्रेम मुक्तिदायक है; अपितु प्रेम में ज्ञान निहित है इसलिए श्री चक्रधर स्वामी ने प्रेम को ज्ञान भी कहा है। उदाहरण के लिए, 'आत्मज्ञान मोक्ष' (वि.१३२) 'प्रेम' ज्ञान के साथ होने वाले प्रेम के लिए सामान्य शब्द है । प्रेम सभी प्रकार से ज्ञान से श्रेष्ठ है। बोनीबाई ने श्री चक्रधर स्वामी का चमत्कारी समाचार सुनाया, जिससे बाईसा की स्वामी में आस्था निर्माण हुई । स्वामी से मिलने के बाद, वह उन्हें अपने मठ में ले गई। उसकी रुचि स्वामी के प्रति बढ़ी और वह प्रेम में बदल गई। जैसे ही वह इस प्रेम के योग्य हुई, तीसरे दिन श्री चक्रधर स्वामी ने उसमें प्रेम का संचार किया। बाद में, बाईसा का प्रेम भक्ति में परिणत हुआ। (ली.च.पूर्वार्ध १०७) यदि कोई आत्मा भगवान की कृपा के योग्य है, तो वे उन्हे अपना प्रेमदान देते है ।

आत्मा भौतिक दुःख, गृह दुःख और गृहहीनता के दुःखों से पीड़ित होती है (पूर्वार्ध १८) । आत्मा को भौतिक वस्तुओं की सेवा से मुक्त होना चाहिए । भौतिक वस्तुओं की सेवा पाप नहीं है, लेकिन इसके कारण आत्मा धर्म से भटक जाती है। इसके लिए व्यक्ति को स्व-संबंधों, अपने गाँव, अपनी मातृभूमि (४४) का त्याग करना चाहिए। व्यक्ति को अहंकार

रहित होना चाहिए और उसके लिए शारीरिक और मानसिक कष्ट सहना चाहिए ईश्वर का (४६)। जीवन के क्षेत्र में स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं है। पुरुष

घटकों में पूर्ण अंतर है; द्वैत है। इन चार घटकों में से किन्हीं दो या अधिक का किसी भी परिस्थिति में एक होना संभव नहीं है। ये घटक नित्य, स्वतंत्र, अनादि और अनंत हैं। आदि सृष्टि के आरंभ में केवल यही चार तत्त्व विद्यमान थे। इनमें से प्रपंच ठोस है। इसका कारण प्रपंच नित्य हैं, जबकि कार्य प्रपंच अनित्य है। भगवान नित्य मुक्त हैं, देवता नित्यबद्ध हैं, और आत्मा बंधन से मुक्त है। (वि.४५) चूँकि देवता नित्यबद्ध हैं, इसलिए वे नित्य उसी अवस्था में हैं। अर्थात् उनकी कोई मुक्ति नहीं है। चूँकि जगत् जड़ है, इसलिए उनकी मुक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता ; किन्तु आत्मा अनादि काल से अज्ञान से बद्ध होने पर भी मुक्त होने की योग्यता रखती है। इसीलिए उसे बंधनमुक्त कहा गया है। जिस प्रकार आत्मा और ईश्वर स्वतंत्र सत्ताएँ हैं, उसी प्रकार जगत् भी एक स्वतंत्र सत्ता है।

देवता नित्यबद्ध हैं। उनका मुख्य कार्य आत्माओं को उनके कर्मों का, सुखद और अप्रिय, दोनों प्रकार का फल देना है। देवता ईश्वर और मुक्ति से संबंधित कर्मों का फल नहीं दे सकते। भगवान नित्य हैं। वे माया, देवता, जगत् और आत्मा के निम्नतम विभाग से परे अर्थात 'परा' हैं। इस परा विभाग में ईश्वर और ब्रह्म हैं। अव्यक्त ईश्वर अवतार लेकर प्रकट होते हैं। ईश्वर आत्मा को मुक्ति प्रदान कर सकते हैं। यद्यपि, मुक्ति के बाद भी आत्मा ब्रह्म या ईश्वर नहीं बन सकती, क्योंकि ईश्वर और जीवन दो भिन्न एवं शाश्वत वस्तुएँ हैं। इसी प्रकार, आत्मा अपने कर्मों के अनुसार देवताओं के फल प्राप्त कर सकती है, परन्तु ईश्वर नहीं बन सकती। ईश्वर सर्वोच्च है। यदि आत्मा बंधी हुई भी हो, तो भी वह मुक्त हो सकती है। यदि ज्ञान से रहित आत्मा ईश्वर के स्वरूप को प्राप्त कर मुक्त भी हो जाए, तो भी वह आत्मा ही रहती है। प्रत्येक आत्मा का स्वरूप अनादि काल से अविद्यायुक्त है। (मा.वा. २) इस अविद्या के प्रभाव से ही जीव का स्वरूप समस्त दोषों का आश्रय बन गया है। अज्ञान के कारण जो अविद्या, मोह आदि दोष प्रवृत्त होते हैं, उनके कारण आत्मा का अस्तित्व नहीं रहता, वह अज्ञान ही रहता है। जब इस अज्ञान के आवरण का भेदन हो जाता है, तो आत्मा में विद्यमान अज्ञान पृथक् हो जाता है और शुद्ध जीवरूप शेष रह जाता है। (मा.वा.३)

परमेश्वर को प्राप्त करने के दो उपाय हैं। एक है भक्ति और दूसरा है ज्ञान। यदि जीवात्मा ने पूर्वकल्पित विचार के अनुसार भगवान से प्रेम जोड़ लिया है, तो भगवान उसमें प्रेम संचारित करते हैं। यह प्रेम ही भक्ति है। इस भक्ति संचार के बाद जीवात्मा भगवान का निरंतर सान्निध्य प्राप्त कर मोक्ष की स्थिति प्राप्त करता है। भगवान से या उनकी सत्ता से भगवान को जानने के बाद, उसे भगवान के अलावा किसी अन्य पर विश्वास किए बिना भगवान का स्मरण करते हुए अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए। उसे विकारों और बुराइयों से मुक्त होना चाहिए और अपनी प्रकृति पर नियंत्रण प्राप्त करना चाहिए। फिर अगले जन्म में, भगवान उसे जोड़ते हैं और उसे मोक्ष की स्थिति में ले जाते हैं। दो प्रकार के विकल्प हैं। एक है आत्मा-परमात्मा पर दिव्य चेतना का होना। ऐसा होने से रोकने के लिए बुद्धिमान को देवी-देवताओं के मंदिरों में नहीं जाना चाहिए। उसे देवताओं को प्रसन्न करने के लिए आयोजित किसी भी समारोह में भाग नहीं लेना चाहिए। उसे उनके तीर्थ स्थलों पर भी नहीं जाना चाहिए। दूसरे प्रकार का विकल्प है। यह श्रेष्ठ, वह निकृष्ठ, यह ब्राह्मण, वह निम्न जाति का इस तरह से मन में भेद उत्पन्न करना या ज्ञानी पंडित होने जैसी पहचान दिखाना भी एक विकल्प ही है।

ISSN:
RESONET : AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY OPEN ACCESS JOURNAL (RESONET-RIMOAJ)
Volume : 1 Issue: 01 | December 2025

आत्मा अपने कर्मों से सब कुछ प्राप्त करती है। एक ईश्वर के अलावा, कोई अन्य देवी-देवता आत्मा को मोक्ष नहीं दे सकते या आत्मा का उद्धार नहीं कर सकते। इसलिए, आत्मा को सांसारिक सुख के बजाय ईश्वर से ईश्वर का सुख माँगना चाहिए। आत्मा की मुक्ति, अर्थात् अच्युतपद की प्राप्ति के दो मुख्य साधन हैं। एक है- 'ज्ञान' और दूसरा है - प्रेम | प्रेम को ही 'भक्ति' भी कहा जाता है। प्रेम ज्ञान से श्रेष्ठ है। (वि.मा. ३०) भक्ति का मार्ग ज्ञान के मार्ग से श्रेष्ठ है। ज्ञान का मार्ग बहुत कठिन है, किन्तु भक्ति का मार्ग ऐसा नहीं है। यद्यपि ज्ञान का मार्ग अविनाशी पद की प्राप्ति कराता है, किन्तु ब्रह्मस्वरूप का ही आनंद अनुभव किया जा सकता है। ईश्वरस्वरूप का नहीं। ईश्वरस्वरूप का आनंद यह भक्ति मार्ग से ईश्वरस्वरूप प्राप्त करने पर ही प्राप्त होता है। ब्रह्मस्वरूप से ईश्वरस्वरूप श्रेष्ठ है, और जिस भक्तिमार्ग से उसे प्राप्त किया जा सकता है, वह भी श्रेष्ठ है।

यदि हम इसे दूसरे दृष्टिकोण से देखें, तो यह देखा जाता है कि ज्ञान प्रेम से श्रेष्ठ है। क्योंकि ज्ञान मुक्तिदायक है। (वि.मा.१) न केवल प्रेम मुक्तिदायक है; अपितु प्रेम में ज्ञान निहित है इसलिए श्री चक्रधर स्वामी ने प्रेम को ज्ञान भी कहा है। उदाहरण के लिए, 'आत्मज्ञान मोक्ष' (वि.१३२) 'प्रेम' ज्ञान के साथ होने वाले प्रेम के लिए सामान्य शब्द है। प्रेम सभी प्रकार से ज्ञान से श्रेष्ठ है। बोनीबाई ने श्री चक्रधर स्वामी का चमत्कारी समाचार सुनाया, जिससे बाईसा की स्वामी में आस्था निर्माण हुई। स्वामी से मिलने के बाद, वह उन्हें अपने मठ में ले गई। उसकी रुचि स्वामी के प्रति बढ़ी और वह प्रेम में बदल गई। जैसे ही वह इस प्रेम के योग्य हुई, तीसरे दिन श्री चक्रधर स्वामी ने उसमें प्रेम का संचार किया। बाद में, बाईसा का प्रेम भक्ति में परिणत हुआ। (ली.च.पूर्वार्ध १०७) यदि कोई आत्मा भगवान की कृपा के योग्य है, तो वे उन्हे अपना प्रेमदान देते है।

आत्मा भौतिक दुःख, गृह दुःख और गृहहीनता के दुःखों से पीड़ित होती है (पूर्वार्ध १८)। आत्मा को भौतिक वस्तुओं की सेवा से मुक्त होना चाहिए। भौतिक वस्तुओं की सेवा पाप नहीं है, लेकिन इसके कारण आत्मा धर्म से भटक जाती है। इसके लिए व्यक्ति को स्व-संबंधों, अपने गाँव, अपनी मातृभूमि (४४) का त्याग करना चाहिए। व्यक्ति को अहंकार रहित होना चाहिए और उसके लिए शारीरिक और मानसिक कष्ट सहना चाहिए ईश्वर का (४६)। जीवन के क्षेत्र में स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं है। पुरुष एवं स्त्री दोनों का रक्षक एक ही है (५१)। आत्मा अनंत जन्मों की जंजीरों से बंधी है, और वे बिना छूटे नहीं जातीं।

महानुभावीय आचारधर्मः अस्तिपरी

महानुभावीय आचारधर्म को 'अस्तिपरी' (जीवन जीने का तरीका) कहा जाता है। यह मार्गदर्शन है कि साधक को ईश्वर प्राप्ति के लिए कैसा आचरण करना चाहिए। स्वामी ने अपने शिष्यों को बार-बार आचरण के नियम बताए हैं। विकार विकल्प शून्यः संभवमात्रः निरालम्बिः देवता स्मरणे: जो जन्म क्षेपि: तेयसि परमेश्वरु पुनर्पि औपुला संबंधु देति: (५६) विकार का अर्थ है इंद्रिय धर्म। इसका नियमन होना चाहिए। विकल्प का अर्थ है भगवान के मार्ग के अलावा किसी अन्य मार्ग की ओर मुड़ना। (अप्पर धर्माचे धारण- याते विकल्प बोलिजे : आ. १६२) भगवान के मार्ग का रहस्य उस ईश्वर को जानना है जो आत्मा, देवता और संसार से भिन्न है। भगवान का मन भगवान पर जाता है और भगवान का मन देवता, तीर्थ, मूर्ति, आत्मा आदि, गैर-ईश्वर पर जाता है, अर्थात मन में विकल्प पैदा करना।

ISSN:
RESONET : AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY OPEN ACCESS JOURNAL (RESONET-RIMOAJ)
Volume : 1 Issue: 01 | December 2025

निरालम्बि का अर्थ है असहाय होना। व्यक्ति को अपने गाँव, अपने रिश्ते, अपने देश का त्याग करना चाहिए। व्यक्ति को अटन विजन (निरंतर भ्रमण एव एकांत जीवन) का अभ्यास करना चाहिए। व्यक्ति को एकांत में सेवा करनी चाहिए। व्यक्ति को भगवान के अवतार की लीलाओं और कार्यों का स्मरण करना चाहिए। जन्म - अनुसरण के पश्चात् अपना जीवन भगवान को समर्पित कर देना चाहिए। 'महाप्रचारक को चाहिए कि प्रजा को निवृत्त कर भिक्षुओं का भोजन पवित्र समझना चाहिए। उसमें कोई चयन नहीं होना चाहिए। चारों वर्णों से भिक्षा मांगनी चाहिए। परिचित का घर नहीं छोड़ना चाहिए। कन्नड़ देश और तेलंगाना देश, जो 'प्रजा से पूर्ण' हैं, उन्हें नहीं छोड़ना चाहिए।' विषयों के अधीन नहीं होना चाहिए (४२), विषयों को साक्षी नहीं बनाना चाहिए (१५), साधक को सात्विक स्थान में रहना चाहिए। स्तुति से विरक्त नहीं होना चाहिए (७०), भगवान के नाम, लीला, मूर्ति और चेष्टा का स्मरण करना चाहिए। 'प्रभु आपका शयन और भोजन हों' (७२), 'ऐसा इस प्रकार देखा जाता हैं' (७२) - ये श्री चक्रधर स्वामी के श्रीमुखी (आचरण श्रृंखला) में कहे गए शब्द हैं, अर्थात् उनके शिष्यों के लिए निर्धारित आचार संहिता।

महान ईश्वर - अवतार की अवधारणा

जिस प्रकार देवता ब्रह्माण्ड के निर्माण के समय ब्रह्माण्ड का कार्य चलाने के लिए ब्रह्माण्ड के संस्थापक के रूप में अवतार लेते हैं, उसी प्रकार ईश्वर भी अवतार लेते हैं। सर्वशक्ति और कृपा से युक्त ईश्वर की ब्रह्माण्ड की रचना करने की मूल प्रवृत्ति निरानंद थी; किन्तु वे सर्वशक्तिमान प्राणियों को अपना सुख प्रदान करना चाहते हैं। आत्मा अनादि अज्ञान से युक्त है (वि.मा.३४)। जब तक इस अज्ञान का नाश नहीं होता, तब तक उसे ईश्वर का आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। आत्मा को अज्ञान के नाश का सच्चा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और उसके अनुसार कर्म करना चाहिए। उसे कर्मक्षेत्र में इस प्रकार के ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। आदि सृष्टि के आरंभ में ईश्वर ने सभी आत्माओं को एक मानव शरीर जिसमे एक पुरुष शरीर प्रदान किया और उन्हें कर्मक्षेत्र में जन्म दिया। आत्मा स्वभाव से अज्ञानी है और देवताओं को उसका ज्ञान नहीं है, इसलिए वे उस आत्मा को ईश्वर - साक्षात्कार का मार्ग नहीं दिखा सकते। आत्म- प्रकाश 'आत्मा को कौन जन्म देगा ? कौनसा अन्य प्रकाश ? वह स्वयं प्रकाशक है (लीलाचरित्र, पूर्वार्ध १७१)। भगवान का ज्ञान तो स्वयं भगवान को ही देना चाहिए; परन्तु भगवान तो 'निर्वेवो निराकारु' हैं। चूँकि जीवों को ज्ञान प्रदान करने की कृपा उनके यहाँ उत्पन्न हुई है, इसलिए वे स्वयं ही सृष्टि की रचना करके 'सवेवो साकारु' होकर अवतार लेते हैं।

दूसरा भाग यह है कि किसी जीव का उद्धार करने के लिए उसे प्रभु की सेवा में होना आवश्यक है। प्रभु के देहधारी होने पर ही जीव सेवा व अन्य कार्य कर सकता है। अज्ञानी जीव को न तो अव्यक्त ईश्वर का ज्ञान होगा और न ही वह सेवा में लगेगा। इसीलिए, जीवों को ज्ञान देने के लिए, उन्हें ईश्वर प्राप्ति का सच्चा मार्ग दिखाने के लिए, उनकी सेवा के योग्य बनाने के लिए, और अंततः जीवों का उद्धार करके उन्हें अपना सुख देने के लिए, प्रभु अवतार लेते हैं, और वह भी मानव अवतार में। क्योंकि ये कार्य केवल मानव अवतार में ही हो सकते हैं। प्रभु तीन प्रकार के अवतार लेते हैं: दिव्य अवतार, मानव अवतार, और बाण अवतार (पशु-पक्षियों का), लेकिन जीव को बचाने का कार्य केवल मानव अवतार में ही हो सकता है। श्री चक्रधर स्वामी कहते हैं-

“वानरियाः यासि स्त्रीवेषे अवतरणे नाही,” ईश्वर स्त्री रूप में अवतरित नहीं होते. (शोधनि आ.पा. ३११.५)

ISSN:
RESONET : AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY OPEN ACCESS JOURNAL (RESONET-RIMOAJ)
Volume : 1 Issue: 01 | December 2025

भगवान के अवतार भी तीन प्रकार के होते हैं-

गर्भ में अवतार-

गर्भ में अवतार का अर्थ है माता-पिता के वीर्य से सामान्य मानव-व्यवस्था के अनुसार माता के गर्भ में विकसित हुए शरीर में अवतार, उदाहरणार्थः श्री कृष्ण अवतार गर्भ का अवतार है। (बाई: श्री कृष्ण अवतार गर्भ का अवतार है: वि.मा.११०) इसी प्रकार, श्री चक्रपाणि अवतार भी गर्भ का अवतार है। ("गोसावियों की प्राण रक्षा की प्रवृत्ति: तब फलटन मे कऱ्हाडे ब्राह्मण के घर अवतार स्वीकार किया: वह गर्भ में अवतार : उन्होंने श्रीचांगदे ओराऊळ गोसावी नाम स्वीकार किया: जननायक पिता: जनकाइसा माता थी। (ली.च.पूर्वार्ध २) .

पतित अवतार-

पतित अवतार का अर्थ है किसी जीव के पतित (मृत) शरीर में प्रवेश करके अवतार लेना। उदाहरण के लिए: श्री चक्रधर स्वामी का अवतार पतित का अवतार है। भगवान ने हरिपालदेव के मृत शरीर में प्रवेश करके अवतार लिया। (ली.च.पूर्वार्ध १७ पुरस्वीकारू).

दवडणेका अवतार-

दवडणे का अवतार लेने का अर्थ है किसी शरीर में व्याप्त जीव को उस शरीर से निकालकर फिर उसी स्थान पर अवतार लेना। उदाहरण के लिए: श्रीगोविंदप्रभु का अवतार। भगवान ने अपनी माता के गर्भ से आत्मा को निकाला और उसे अपने अवतार के लिए स्वीकार किया। जिस प्रकार भगवान श्रीगोविंदप्रभु का अवतार दवडणे का अवतार है, उसी प्रकार गर्भ का अवतार भी है। क्योंकि यद्यपि उन्होंने आत्मा को गर्भ में धारण किया है, फिर भी वे स्वयं गर्भ से अवतरित हुए।

मानव अवतार लेते समय, भगवान गर्भधारण के तीनों रूपों को स्वीकार करते हैं, अर्थात्, गर्भावस्था, पतन और गर्भ (वि.स्थ.१०५) महानुभाव दर्शन के अनुसार, पंचकृष्ण हैं (१) श्रीकृष्ण चक्रवर्ती (२) श्रीदत्तात्रेय प्रभु (३) श्रीचक्रपाणि महाराज (४) श्रीगोविंद प्रभु और (५) श्रीचक्रधर स्वामी इनमें से श्रीदत्तात्रेय, श्रीकृष्ण, श्रीचक्रपाणि सभी 'गर्भ' के मानव अवतार हैं। श्रीगोविंद प्रभु दवडणे का अवतार हैं जबकि श्रीचक्रधर स्वामी 'पतित' अवतार हैं। भगवान के मनुष्य अवतार के तीन प्रकार है। एक परदृश्यावतार, दुसरा है अवरदृश्यावतार और तीसरा है परावरदृश्य अर्थात उभय दृश्यावतार। (परमेश्वरु परदृश्य होतिः अवरदृश्य होतिः परावरदृश्य होतिः वि.मा. २०)। जो केवल पराशक्ति को स्वीकार करता है वह परादृश्य अवतार है। जो केवल अवर शक्ति को स्वीकार करता है वह अवरदृश्य अवतार है। जो परा को स्वीकार करता है वह परादृश्य अवतार है क्योंकि वह द्विदृश्य अवतार को स्वीकार करता है, वह उभयदृश्यावतार है।

उपरोक्त संक्षिप्त विश्लेषण से पूर्णावतार के विषय में सामान्यतः निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रकाश डाला जा सकता है-

"(१) ईश्वर सदैव अपने स्वरूप में विद्यमान रहते हैं, तथापि, विशिष्ट कार्यों हेतु वे अन्य रूपों में भी पृथ्वी पर अवतार लेते हैं। अवतार में असाधारण गुण, सिद्धियाँ एवं अद्भुत चमत्कारी शक्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

(३) अवतारी पुरुष का शरीर तेजोमय होता है।

(४) अवतार मिथ्या या मायावी नहीं, अपितु वास्तविक होता है।

ISSN:
RESONET : AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY OPEN ACCESS JOURNAL (RESONET-RIMOAJ)
Volume : 1 Issue: 01 | December 2025

(५) ईश्वर के सभी अवतारों में ईश्वर के सभी या कुछ गुण विद्यमान होते हैं।
अवतारों के ऐसे पाँच लक्षण तर्कतीर्थ श्री लक्ष्मणशास्त्री जोशी ने विश्वकोष ' ८ में दिए हैं। (मराठी विश्वकोष भाग १ अ, पृ. ६०५)

श्री चक्रधर स्वामी में उपरोक्त सभी पाँच विशेषताएँ पूर्णतः पाई जाती हैं। अनेक लीलाओं से स्पष्ट है कि उनमें असाधारण गुण थे। उनका प्रमुख कार्य 'धर्म की स्थापना' था। असाधारण साहस, सर्वज्ञता और असीम त्याग, ये समस्त गुण उनकी दिव्यता के प्रमाण हैं। 'धर्म, वैराग्य, ज्ञान, ऐश्वर्य' ये चारों गुण उनके ओर संग्रहित थे। वे जीवन-संवर्धन के प्रति अनुरक्त थे। स्वामी कहते हैं, "कवना कवनि व्यसनः कवना कवनि व्यसनः एथ जीवोद्धारण हेचि व्यसन : " उनका जीवन कार्य युगधर्म का प्रचार था।